परमसंत डा० श्री चतुर्भुज सहाय जी

महाराज के



अमृत - वचन

सत्संगियों और अभ्यासियों को
समय-समय पर दिये गए
उपदेशों का संग्रह

संग्रहकर्त्ता :

हरीश चन्द्र प्रसाद

Presented to Bhagwan
Shree Gopinath Ji Ashram
&
Shri J.L. Fotedar
GWALIOR
1971



अमृत वचन

हमारे गुरु महाराज श्री महात्मा जी सब तरह से समर्थ थे, उनका सत्संग वास्तव में पतित पावनी-गंगा था। गंगा में लोग मैले कपड़े धोते हैं, शरीर मल-मल कर स्नान करते हैं, अपनी बस्तियों के गन्दे नाले छोड़ते हैं परन्तु गंगा है कि जो उनको भी पवित्र कर देती है और अपने को भी शुद्ध और निर्मल रखती है। इतनी गन्दगी पड़ने पर भी गंगा अपने जल में कभी विकार नहीं आने देती। वर्षों शीशी में रखने पर भी इसमें कभी कीड़े नहीं पड़ते। ये ही उनका हाल था। बड़े-बड़े पतित और नीच प्रकृति वाले लोग आते थे और सत्संग में शामिल हो जाते थे। उन्होंने कभी किसी से नहीं कहा कि तुम अपनी फलां आदत को छोड़ दो। अपने आप ही धीरे-धीरे सब कुछ हो जाता था। पुराने सत्संगी लोग भी कई बार गलती कर जाते थे, आचरण भ्रष्ट हो जाते थे, लेकिन उन्हें भी वह कुछ नहीं कहते थे। यह उनका ईश्वरीय गुण था परन्तु अभी हम ऐसे नहीं हो पाये। हमको तो एक छोटे नाले के सदृश्य समझो कि जिसका पानी थोड़ी सी गन्दगी मिलने पर ही मैला हो जाता है। वह समय चला

गया, अब खूब सोच समझकर इधर कदम रक्खो। यदि तुम अपने मन के विकारों को तथा इन पुरानी आदतों को नहीं छोड़ोगे तो क्या जाने आगे चल कर हम तुमसे घबड़ा जाँय और तुमको छोड़ भागें।

*

जैसे किसी मुनीम या नौकर को किसी कम्पनी या फर्म के नुकसान, फायदा से अधिक सरोकार नहीं होता वैसे ही तुम हमको भी जानो। हम न तो इस सत्संग के मालिक हैं और न किसी के गुरु हैं। गुरु तो दूसरा है कि जो, अपने निजधाम में बैठा हुआ सबको देख रहा है। हमारी तैनाती सिर्फ इतनी है कि लोगों को उचित सम्मति (सलाह) देते रहें और उनके व्यवहार की देख-भाल करते रहें।

*

हमारे परवाने (आज्ञा-पत्र) में यह लिखा हुआ है कि यदि कोई सत्संगी बार-बार कहने पर भी अपने व्यवहार (अख़लाक) को ठीक न करै तो हम उसे अपने सत्संग से खारिज कर सकेंगे अथवा सत्संग से प्राप्त हुई वस्तु को उससे छीन सकेंगे इसलिये अब सम्हल के काम करो।

*

बरसें हो गई हैं परन्तु तुम्हारी रहन सरन तथा तुम्हारी आदतें जरा सी भी नहीं बदलीं और न उनके बदलने के लिये तुमने कभी कोशिश की। यदि एक-एक आदत को छोड़ते जाते तो आज तक पूरे हो जाते। परन्तु तुमने इधर ध्यान दिया ही नहीं। अब भी समय है। यदि लाभ उठाने की इच्छा रखते

हो तो अपने को सम्हालो। रहन सहन सुधारे बिना साधन में पूरी उन्नति नहीं होती। इसी को तो अष्टांग योग में यम और नियम कहा है। नियम पर चलते नहीं और हमेशा शिकायत किया करते हो सो तुम्हारी बात कौन सुने।

*

आज कल हमारा ख़्याल कुछ ऐसा हो रहा है कि अधिक भीड़-भाड़ जमा कर लेना वा बहुत से लोगों से सत्संग को भर लेना अच्छा नहीं है। चाहे थोड़े हों परन्तु वह सच्चे जिज्ञासु और प्रेमी हों और अच्छे हों उनको ही रखना चाहिए।

*

बहुत से लोग जोश में आकर साधन तो पूछ लेते हैं परन्तु बड़ी लापरवाही से उसको करते हैं और न फिर कभी हमसे मिलते हैं न पत्र द्वारा अपना हाल लिखते हैं। ऐसों को न तो हम अपना समझते हैं न उनको आगे के लिये पाठ देते हैं। सहायता उन्हें ही दी जाती है जो तन मन से नियम पूर्वक अपना काम किये जाते हैं।

*

यदि शौक रखते हो तो जुट पड़ो और आज्ञानुसार चलो। नहीं तो यह ब्रह्मानन्द ऐसा सहज नहीं है कि बिना कुछ किये धरे यों ही मिल जाय।

*

पिछले लोगों ने बड़ी-बड़ी तपस्याओं से और बड़े-बड़े कठिन परिश्रमों से सिद्धि प्राप्त कर पाई थी। अब तुम्हारे लिये

तो मार्ग अति सुगम हो गया है। तो भी तुम से नहीं होता तो फिर अब तुम को क्या कहा जाय।

*

बद्रीनाथ के यात्री पहिले पगडण्डी रास्ताओं से और भूले के पुलों से बरफानी पर्वतों को तै करते थे। अब आजकल गवर्मेंट ने पहाड़ों को काटकर चौड़ी सड़कें बना दी हैं जिन पर मोटरें दौड़ रही हैं। अब हवाई जहाज़ भी जाने लगा है। इतनी आसानी हो जाने पर भी यदि तुम दर्शन न कर सको तो तुमको भाग्यहीन कहा जायगा यही दशा आजकल योग साधनों की है, अत्यन्त सरलता से थोड़े ही परिश्रम में काम बन जाता है। परन्तु न करो, तो इसका क्या चारा है।

*

महात्मा गाँधी जी को धन्य है कि इतना बड़ा भार शिर पर लादे हुए और सारे देश वासियों की फ़िक्र करते हुए शान्त और प्रसन्न रहते हैं। हमारा तो यह हाल कि इस थोड़ी सी तादाद के बोझ को नहीं उठा सकते और परेशान हो जाते हैं।

*

हमारे गुरु महाराज का जीवन हमेशा कष्टप्रद रहा परन्तु इस पर भी वह खुद शान्त रहे और सहस्रों मनुष्यों को शान्ति बांट गये, यह समर्थ्यता के लक्षण हैं। हमें देखो कि जरा सी विपत्ति आ जाने पर तथा ज़रा सी किसी काम में रुकावट हो जाने पर ही अशान्त हो जाते हैं यह हमारी कमज़ोरी का कारण है।



आप लोग भूल कर रहे हैं कि जो शान्ति लेने यहाँ आये हैं। जो वस्तु हमारे पास है ही नहीं उसे हम कहाँ से देंगे। आपको ऐसे महापुरुषों से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये और उनके दर से भिक्षा माँगना चाहिये कि जिनके स्थानों के चारों ओर शान्ति के बादल मँडला रहे हों और तपन जहाँ पर न हो।



ऐसे स्थानों का अभाव कभी न हुआ और न होगा। भारत की इस बिगड़ी दशा में भी ढूँढ़ने पर तुमको मिल सकेंगे। खोज करो, फिर उस स्थान के मालिक के चरणों में पड़े रहो, उसी की ओर टकटकी लगाओ, समय आने पर वह तुमको शान्ति देगा परन्तु जल्दी मत करना और "न इस बात की परवाह करना कि वह वहाँ है वा नहीं। वह किसी लोक में हो तुम्हारी खबर अवश्य लेगा।"



हमारे गुरुदेव श्री महात्मा जी जब तक इस लोक में रहे हमारा जीवन भी अत्यन्त आनन्द और शान्ति से कटा, हर समय बेफिक्र और मस्त रहते थे, जहाँ कोई कष्ट आया, उससे विनय किया नहीं कि दूर हो गया परन्तु अब किससे कहें और कौन हमारी सुनेगा।



हमको हमेशा ही साधु महात्माओं के दर्शन होते रहे और अब भी बराबर मिलना रहता ही है। परन्तु ऐसे लोग कम देखने में आये कि जो पूर्ण समर्थ हों तथा प्रेम और दया के भंडार हों इसलिये तो हमें कभी-कभी रोना आ जाता है।



शास्त्र कहता है कि आत्मा अजर अमर है, वह न कहीं आती है और न जाती है, हर जगह मौजूद रहती है जैसे शरीर रखते हुए वह काम करती थी वैसे ही अब भी कर सकती है परन्तु यह सब कहने भर की बातें हैं। सम्भव है ऐसे भी लोग हों जो इस पर पूर्ण विश्वास रखते हों। हमको तो ऐसा मालूम दे रहा है कि हम अनाथ हो गये, अब इस दुनियाँ में कोई खबर लेने वाला हमारा नहीं रहा। यदि वह कहीं होता तो यह दुःख हमको क्यों झेलने पड़ते।



जब तक हमको प्यार करने वाला यहाँ था तब तक तो झट दौड़ के अपनी व्यथा उससे कह आते थे। अब वह मोक्ष आत्मा, स्वेच्छाचारी हो न जाने किस देश में भ्रमण कर रही होगी। हमारी आवाज वहाँ तक कैसे पहुँचे ?



मोक्ष आत्मायें मनुष्यों से प्रेम करती हैं परन्तु वह बन्धन में नहीं रहतीं और न उनका किसी से ममत्त्व रहता है। इसलिये उनका बहुत सुमिरन करने पर उनको ख़बर हो पाती है और फिर भी यह शक रहता है कि उनकी दया दृष्टि हमारी ओर घूमे वा नहीं।



जो लोग मेजों पर हाथ रख के रूहों (आत्माओं) को बुलाया करते हैं उनके यहाँ नीच आत्माएँ जो पृथ्वी के समीप ही वायुमण्डल में भ्रमण करती रहती हैं आया करती हैं। ऊँचे

लोकों की वा मोक्ष आत्माएँ उनके बुलाने से नहीं आ सकतीं। यह सब उनका भ्रम है और अपना ख्याल है जो शक्ल धारण कर उनके सन्मुख आके कार्य करने लगता है।

*

कृष्ण और गोपियों का प्रेम था। परन्तु निर्मोही कृष्ण एकदम उनको छोड़ के द्वारिका चला गया। उस दिन से ही गोपिकाओं का सारा आनन्द और सुख ही मानो समाप्त हो गया। गोपिकाएँ तो बराबर प्रेम से उनको भजती ही रहीं परन्तु निठुर कृष्ण ने अपने जीवन में कितनी बार ब्रज की ओर मुँह किया ? जिन्दगी भर याद करते-करते और अपना तन मन घुलाते-घुलाते बुढ़ापे में एक वेर उनका दर्शनकर सकीं। यही हाल मोक्ष आत्माओं का है।

*

जिन भक्तों से उनका सम्वन्ध होता है उनकी सहायता करने के लिये स्वर्गीय आत्मा आती तो अवश्य है परन्तु आने से पहले परेशान भी खूब कर लेती है। भजन करते-करते जब भक्त बावला हो जाता है और उसके सारे उत्साह भंग हो जाते हैं तब वह पधारती है। आज कल के समय में यह भला किससे हो सकता है, इसीलिये तो हम सब दर्शनों से वंचित रह जाते हैं।

*

सुनने में आता है कि भगवान हर समय भक्तों की सहायता के लिये तैयार रहते हैं मुमकिन है कि ऐसा होता हो लेकिन ऐसा दावा कौन कर सकता है कि मैं भक्त हूँ ? भक्त बनना बहुत

कठिन है। तन-मन और धन कुरवान करके भक्ति खरीदी जाती है। हम लोग तो दोनों हाथों में लड्डू पकड़ना चाहते हैं सो भला कैसे हो सकता है ?

भक्ति दुहेली गुरु की, नहीं कायर का काम।
सीस उतारे भुँइ धरै, तब पावै निज नाम ।।

*

गोपिकाएँ प्रेम की मूर्ति थीं, वह अनन्य भक्ता थीं, अपना सर्वस्व सौंप के वह कृष्णमयी हो गई थीं, वह हर समय ही कृष्ण-कृष्ण जपा करती थीं परन्तु फिर भी उनको सारी आयु विरह यातना ही सहनी पड़ी। बतलाइये कि हम लोगों की किनमें गिनती है जो अपने को भक्त कहते हैं।

*

कभी-कभी तो मनुष्य को अकस्मात् ही सहयता पहुँच जाती है उस समय उसका विश्वास ईश्वर की ओर हो जाता है और वह समझने लगता है कि कोई शक्ति है जो हमारी रक्षा कर रही है और हमारी खबरगीरी रखती है और कभी-कभी दिन रात माँगने और चिल्लाने पर भी कोई नहीं सुनता। उस समय ऐसा संदेह हो जाता है कि कोई नहीं है। इसका निवारण हम तो यह कर लिया करते हैं कि आजकल वह हमसे बहुत दूर हो गये हैं अथवा कोई बहुत बड़ी दीवार हमारे और उनके बीच में आ गई है इसलिये हमारी आवाज उनके कानों तक नहीं पहुँचती, न हमारी विपदा दूर होती है।

*

कभी-कभी वह सुनते हुए भी अनसुनी कर देते हैं, आखिर बड़े आदमी ही जो ठहरे। बड़े लोग छोटों की माँगों को सुनते तो

हैं पर अगर मौज आ गई तो पूरा कर दिया नहीं फटकार दिया, फिर भी जो उसने नहीं माना तो कान पकड़वा के बाहर निकलवा दिया।

*

कान पकड़े जाने और धक्के देने पर भी जो द्वार नहीं छोड़ता उसकी आशाएँ पूरी हो ही जाती हैं परन्तु इसके लिये पूर्ण सत्याग्रह की जरूरत पड़ती है तब कहीं दयादृष्टि सरकार की होती है।

पड़े रहो दरबार में, धका धनी के खाउ।
कबहूँ धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाउ॥

सूखा ज्ञान किसी काम का नहीं, उसके साथ प्रेम का छींटा होना चाहिये। जिसके अन्दर संसारी वस्तुओं के लिये प्रेम नहीं वह ईश्वर से भी प्रेम नहीं कर सकेगा। "प्रेम और दया" यह दोनों महान् पुरुषों के लक्षण हैं। कठोरता बुरी चीज है।

*

भगवान रामचन्द्र जी सर्वज्ञ थे परन्तु राजा दसरथ की मृत्यु के समय उनको भी रोना आ गया, इसी को मनुष्यता कहते हैं। जिस समय जैसा व्यवहार बर्तना चाहिये वैसा ही बर्ता जाय, इसीलिये उनको मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है।

*

एक अवस्था में ठहर जाना अच्छा नहीं होता। हालतें बदलती रहें वही इस मार्ग की उन्नति है। कभी आनन्द हो,

कभी गैर-आनन्द हो, कभी रोना हो, कभी हँसना हो, कभी प्रकाश हो, कभी अंधकार हो, कभी ज्ञान हो और कभी अज्ञानता हो, कभी दर्शन हो, कभी विरह व्यथा हो इत्यादि ।

*

ज्ञान के आगे भी सैकड़ों और अवस्थायें आती हैं उन सबमें प्रेम और निर्हंकारता प्रधान रहती है उनका वर्णन करना कठिन है । ज्ञानी समझते हैं कि हमने जान लिया यह अभी बहुत दूर हैं ।

*

किसी से प्रेम न करो, सबको मिथ्या समझो, यह ज्ञानियों के मुख्य साधन हैं । प्रेम का मार्ग इससे बहुत भिन्न है । वह कहता है सबसे ऐसा प्रेम करो कि जैसा तुम अपने से करते हो । जितना-जितना प्रेम का दायरा बढ़ता जायगा उतने ही उतने ईश्वर के समीप तुम होते जाओगे ।

*

ज्ञानियों के यहाँ कर्म करना निषेध है, वह केवल विचार और विवेक के द्वारा चलना चाहते हैं । "ब्रह्म सत् है और यह सब असत् है" इसी ख्याल को मन में बांधा करते हैं परन्तु बिना साधन और अभ्यास के ऐसा विश्वास दृढ़ कर लेना कठिन है । समय आने पर यह लोग फेल हो जाते हैं । प्रथम मन के एकाग्र करने का अभ्यास बढ़ाओ, यहाँ तक कि तुम 'संयमी' दशा को पहुँच जाओ, फिर बुद्धि को शुद्ध-निर्मल और तीव्र करो तब तत्त्व ज्ञान होता है यही प्राचीन नियम था ।

*

एक बेर कई महापुरुष बैठे सत्संग कर रहे थे, एक ने पूछा– मनुष्य को कहाँ तक जानने की आवश्यकता है। निर्णय हुआ ज्ञान का अन्त नहीं है, ब्रह्मादिक को भी पूर्ण ज्ञान नहीं हो सका, यह सब माया की मानसिक कल्पना है। इसलिये इतना जान लो कि तुम्हें क्या करना है और तुम्हारा कल्याण कैसे हो सकता है। बस !

*

अपने कल्याण के लिये अपना चरित्र (अख़लाक) सुधारना बहुत ज़रूरी है। इसीलिये तो अष्टाङ्ग-योग ने यम-नियम के साधन सबसे प्रथम रक्खे हैं जो साधक इधर ध्यान नहीं देते और अभ्यास करते हैं वह लंका के राक्षस बन सकते हैं ऋषी नहीं बन सकते।

*

राक्षसों में तपोबल तो था परन्तु उनकी वृत्तियाँ असुर भाव को लिये हुये थीं, वह अपनी मानसिक शक्तियों से बड़े-बड़े काम कर डालते थे। ऋषियों में ऐसा नहीं था इसीलिये लोग उनके चरण पखारते थे और उनकी इज्जत करते थे। हमको भी ऋषि बनने की कोशिश करना चाहिये।

*

निःस्वार्थ भाव से भगवान की शरण जाओ। लोक परलोक तथा मुक्ति इत्यादि की चाहना मत करो, माँगना बहुत बुरा है। जो इच्छा नहीं रखते उन्हें ही सब कुछ दिया जाता है; देखो विभीषण से भगवान क्या कहते हैं "यद्यपि सखा तोहि चहियत

नाहीं। मो दर्शन अमोघ जग माहीं॥" विभीषण! तू कुछ चाहता नहीं है इसलिये ही मैं अमोघ (दोनों लोकों का सुख व वैभव) तुझे देता हूँ। तुम भी विभीषण बनो तब प्रभु की प्रसन्नता तुम पर होगी।

*

तुम धन और ऐश्वर्य्य में सुख समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। यदि इनमें सुख होता तो आज संसार के धनी और बड़े आदमी सब सुखी ही दिखाई पड़ते परन्तु उनको हम साधारण मनुष्यों से भी अधिक कष्ट में पाते हैं। इसलिये पता चलता है कि सुख केवल भगवान की कृपा से ही मिलता है। हमको उचित है कि भगवान की आज्ञाओं का पालन करते हुए हमेशा दया की भिक्षा उनसे मांगते रहें जिस दिन यह तुम्हारी प्रार्थना स्वीकृत हो गई उसी दिन तुम सर्व सुखी बन जाओगे और कोई उपाय सुख प्राप्ति का नहीं है।

*

कबीर, दादू, परमहंस रामकृष्णदेव, भक्त तुकाराम, समर्थ-रामदास, ह० मुहम्मद साहब, ईसा मसीह इत्यादि महापुरुष कितने पढ़े लिखे थे कि जिन्होंने संसार से अविद्या के पैर उखाड़ दिये और धर्म की एक नई धारा प्रवाहित कर दी।

*

दुख का भण्डार उत्तर में है और तुम दक्षिण दिशा को मुँह उठाये चले जा रहे हो। जितना इधर को अधिक चलोगे उतना ही वह तुमसे दूर होता जायगा। लौटो, किसी जानकार से रास्ता पूछ कर उत्तर की ओर चलो तब कल्याण होगा। यही तो उपनिषदों के उत्तरायण और दक्षिणायण मार्ग हैं।

सूर्य नाम ज्ञान का है । जब उत्तरायण मार्ग का ज्ञान होता है तब मुक्ति और दक्षिणायण के ज्ञान से अधोगति प्राप्ति होती है ।



श्री भीष्म पितामह बाण शय्या पर पड़े पड़े प्राण छोड़ने के लिये उत्तरायण मार्ग का इन्तजार करते रहे थे वह इसलिये नहीं कि उत्तरायण के षट्मास ही मुक्ति देंगे वरन् उनका अभिप्राय यह था कि दुर्योधन के धन से पले हुए शरीर और मन का विकार नष्ट हो जाय। रजोगुणी और तमोगुणी अवस्था में त्यागा हुआ प्राण अधोगति की ओर ले जाता है और सतोगुणी अवस्था में दिव्य लोक प्राप्त होते हैं । सतोगुण ज्ञान है, सतोगुण प्रकाश है और तमोगुण अज्ञान है और अन्धकार है । रजोगुण मिलौनी है । उत्तरायण, शुक्लपक्ष, दिन इत्यादि सतोगुण के ही नाम हैं और दक्षिणायन, कृष्णपक्ष और रात्रि तमोगुण को कहते हैं ।



मनुष्य शरीर बारम्बार नहीं मिला करता, बड़ी कठनाइयों से चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ प्राणी उत्तम संस्कारों द्वारा भगवान की दया से प्राप्त कर पाता है । कोशिश यह होनी चाहिये कि मृत्यु से पूर्व ही हम अन्धकार को हटाकर ज्ञान रूपी लालटैन हाथ में ले लें तब ही मार्ग हमारे लिये सुगम हो सकेगा और हम आवागमन के चक्र से बच सकेंगे ।



बैठ जाने पर अपने प्रश्न के लिये उचित समय की प्रतीक्षा करो । जाते ही लट्ठ सा मत मारो । वह तुम्हारे भावों को

पहिचान कर खुद ही तुमसे पूछेंगे। जल्दी मत करो। इशारा पाने पर उसी ढंग से बातचीत करो कि जैसे एक बड़े अफसर अथवा किसी राजा से की जाती है। जब तक वहाँ बैठो, अपना पूर्ण ध्यान (Full attention) उनकी ही ओर रक्खो। इधर-उधर मत देखो, मुँह फेर के अथवा पीठ देकर किसी दूसरे से वार्तालाप मत करो। यदि ऐसा करना हो तो अलग उठ जाओ। सन्तों के दरबार के ऐसे ही नियम हैं।

*

जिस समय वह बात कर रहे हों तो उस समय उनके चेहरे और आँखों की ओर देखते रहो, ऐसा करने से तुमको एक लाभ होगा कि उनकी विद्युत शक्ति की जिसमें शुद्ध सात्त्वकी भाव भरे होंगे तुम्हारे भीतर प्रवेश होगी और वह तुमको उन्नति के मार्ग की ओर झुकायेगी।

*

जिस समय वहाँ से उठो तो पीठ फेर कर मत चलो। थोड़ी सी दूर तक वा तीन कदम तक उलटे पाँव जाओ उसके पश्चात चले जाओ। ऐसा न करने से जो शक्ति वा एलेक्ट्रिक करेण्ट तुम्हारे अन्दर आई थी उसका बहुत बड़ा भाग वहीं छूट जायगा।

*

जिन बातों को तुमने श्रवण किया है उन पर घर आके मनन करो फिर उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ।

*

बतलाई हुई क्रिया को एक सप्ताह करके देखो। उस समय तुम अन्दाज़ा लगा सकोगे कि यह साधन ठीक और लाभदायक

है वा नहीं । इससे पहले उसके लिये कोई सम्मति प्रगट मत करो ।



शक्तिशाली और अनुभवी महात्माओं के बतलाये हुए साधनों से एक सप्ताह में ही परिवर्तन होने लगता है । जिस समय अपनी बुराईयाँ समझ में आने लगें, मन में शान्ति और विषयों से वैराग्य अनुभव होने लगे तभी जानो कि उन्नति होने लगी है ।



आरम्भ करने से पहले यह अन्दाज़ा लगा लो कि जिस साधन को उन्होंने बताया है उसको हम कर सकेंगे या नहीं । हमारी फ़ुरसत और ताकत के लिहाज़ से वह ठीक भी है या नहीं । यदि तुम उसको नहीं कर सकते तो मत करो और उनसे कह दो कि इसका करना हमारी सामर्थ्य के बाहर है ।



लाभ प्रतीत होने पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ उनको करने में जुट जाओ । दृढ़ता के साथ अभ्यास करो, जल्दी मत मरो । यह ब्रह्म-विद्या है, कुछ समय लेगी । यदि इस बीच में तुमने हिम्मत तोड़ दी तो तुम्हारा बना बनाया काम बिगड़ जायगा और तुम न इधर के रहोगे न उधर के ।



मार्ग दो ही हैं १—श्रेय मार्ग और २—प्रेय मार्ग । श्रेय मार्ग सुख-शान्ति और ईश्वर की ओर ले जाता है और प्रेय मार्ग इस सबसे विमुख करता हुआ दुःख और क्लेशों में ढकेलता है । तुम इनमें किसको पसन्द करते हो ।

*

प्रेय मार्ग में मन को लुभाने वाली अनेक वस्तुएँ मिलती हैं, परन्तु अन्त में थोथी और कष्टदायक प्रतीत होती हैं और श्रेय मार्ग आरम्भ में मनोरंजक नहीं होता परन्तु ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उनमें ऐसा आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता है कि जिसके सन्मुख संसारी सुख तुच्छ जँचने लगते हैं।

*

ऐसे समझो कि एक सड़क उत्तर से दक्षिण की ओर गई है तुम बीचो बीच उसके खड़े हो, तुम्हारे पास से जो रास्ता उत्तर को जाता है वह श्रेय मार्ग है और दूसरा दक्षिण को जाता है वह प्रेय मार्ग है। इन्हीं को उत्तरायण और दक्षिणायण कहा जाता है।

*

उत्तर का मार्ग शान्ति और सुख देने वाला है और दक्षिण का मार्ग अशान्ति और दुखदाई है।

*

तुम्हारा मुख दक्षिण की ओर गया है और तुम धुनि बाँधे उधर की ओर चले जा रहे हो, तुम्हारा शान्ति-धाम उत्तर में रह गया यह तुमको सुधि ही नहीं रही, तुम समझ रहे हो कि सुख का भण्डार इधर ही होगा। लौटो उत्तर की दिशा को चलो, यदि मार्ग नहीं जानते तो किसी जानने वाले से पूछ लो, इधर-उधर मत भटको, सीधी सड़क पकड़े हुए चले चलो, कुछ दिन पश्चात् तुम वहाँ अवश्य ही पहुँच जाओगे और उस समय तुम अपने को धन्य समझोगे।

*

कहावत है कि नाक की सीध चले चलो, पीछे मत देखो। यहाँ नाक की सीध चलना ही सुषम्ना में गमन करना है, यह सीधी धुर स्थान को गई है, शेष ईड़ा, पिङ्गला, नाड़ी इधर-उधर को जाती है, यह रजोगुणी और तमोगुणी है। सुषुम्ना में कदम रखते ही सात्वकी भाव जाग्रत होकर उन्मनि अवस्था आने लगती है। ईड़ा चंचलता और पिङ्गला-मूढ़ता व अज्ञान है। सुषुम्ना ज्ञान और शान्ति है।

*

मुद्दत से मन ईड़ा और पिङ्गला में भ्रमण करता रहा है इसलिए इधर ही जाने का उसका स्वभाव बन गया है। उसके इस स्वभाव को बदलो। जबरदस्ती उसको सुषुम्ना में प्रवेश करो। यदि वह तुम्हारे काबू में नहीं आता तो किसी शक्तिशाली पुरुष की सहायता लो। उसकी कृपा से बिना परिश्रम किये थोड़ी देर ही में मन पर तुम्हारा अधिकार हो सकता है और फिर उससे मनमाने काम तुम ले सकते हो।

*

श्रुति कहती है—'तं यथा यथोपासते त देव भवति।' अर्थात् तुम जैसा ख्याल रक्खोगे वैसे ही बन जाओगे। यदि गुणों की ओर तुम्हारा ध्यान रहेगा तो तुम में गुण आवेंगे और यदि अवगुणों की ओर चित्त है तो अवगुण तुम में प्रवेश होने लगेंगे। यह खूब याद रक्खो।

*

हंस मिले हुए दूध में से जल को छोड़ देता है और दूध को पी जाता है और कोआ प्रातः उठते ही विष्टामें चोंच मारता है। तुम हंस बनो कौवे का स्वभाव मत लो।

*

संसार द्वन्द से बना है। यहाँ के प्रत्येक प्राणी में गुण और अवगुण तुमको मिलेंगे, किसी में कम और किसी में ज्यादा। पुर्ण पुरुष केवल परमात्मा है जो माया और काल से परे रहता है। तुम यदि अपना भला चाहते हो तो किसी के दोषों की ओर दृष्टि न डालो, उसे उसी के लिए रहने दो और तुम उसकी अच्छी बातों को धारण कर लो।

*

जन्मान्तर से संग आये हुए संस्कार तथा मुद्दतों की बनी हुई आदतें मुशकिल से छूटती हैं। उनके लिए समय लगता है। जो लोग अच्छे बनने के प्रयत्न में लग रहे हैं वह उन लोगों से अच्छे हैं कि जो बातें ही बनाते रहते हैं और करते कुछ नहीं।

*

यम और नियम का पालन कर लेना साधारण काम नहीं है यह बिना ईश्वरीय सहायता के नहीं हो सकता। इसलिए प्रथम धारणा और ध्यान के द्वारा उपासना का आरम्भ करो। साथ ही साथ उस जगह नियंता सर्व शक्ति-शाली परमात्मा से प्रार्थना करते चलो कि हे पिता! हमको ऐसा बल दे कि हम आसुरी वृत्तियों पर विजय प्राप्त कर सकें। यही यम और नियम पालन करने का उपाय है।

*

जिस प्रकार शिशु (बालक) के सब भाग साथ ही साथ बढ़ते और पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार महर्षि पातंजलि के बनाये हुए आठों योग–अंश साथ ही साथ पालन किये जाते हैं ऐसा

नहीं है कि यम और नियम के पूर्ण पालन कर लेने के पश्चात् धारणा और ध्यान का आरम्भ किया जाये। जो लोग ऐसा समझ रहे हैं वह गलती पर हैं।

*

आजकल समय बहुत ही विपरीत है। जो लोग साधन और अभ्यास में लग चुके हैं उनके लिये भी पार पहुँचना असम्भव सा हो रहा है क्योंकि एक ओर तो प्रकृति की तमोगुणी और रजोगुणी शक्तियों का प्रवाह बड़े जोरों से धक्का दे रहा है और दूसरे दरिद्रता और रोगों ने भारतवर्षीय मनुष्य समाज को घेर रक्खा है। समय का बहुत बड़ा भाग रोटी में ही चला जाता है फिर भी पेट नहीं भरता और शेष बचा कुचा रोगों के साथ संग्राम करने में। फिर बताओ शान्ति की उपासना किस समय हो ?

*

हृदय में लालसा है, चाहते हैं कि ईश्वर प्राप्ति तथा सुख और शान्ति के साधन करें और अवसर प्राप्ति पर गुरुपदेशानुसार उधर लग भी जाते हैं पर कुछ दूर चल के उनकी गाड़ी धीमी हो जाती है और कभी-कभी तो बिलकुल रुक जाती है। ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि आजकल सम्पूर्ण वातावरण (Atmosphere) ही बिगड़ रहा है। संसारी लोगों की सुहबत उसको संसार की ही ओर घसीट लेती है।

*

दुखों से घबड़ा के चाहे गृहस्थी ईश्वर प्रणिधान (समर्पण) कर भी डाले परन्तु विरक्तों के लिये बड़ा ही कठिन है क्योंकि यह दूसरों की कमाई खा-खा के मस्त और अहंकारी हो जाते हैं। बेफ़िकरा आदमी भी कभी किसी की शरण गया है ?

*

ज्वार भाटे तो सबको ही आये हैं परन्तु जो उल्टा सीधा लगा रहता है और अपना नियम नहीं तोड़ता उसका समय आने पर ईश्वरीय सहायता मिलती है और उसका बेड़ा पार हो जाता है।

पड़े रहो दरबार में ढका धनी के खाउ।
कबही धनी निजावई जो दर छाड़ न जाउ ॥

*

सत्संग एक वृक्ष है कि जिसकी जड़ गुरु और पत्ते, फल-फूल तथा डाली तुम लोग हो। जड़ जब तक निरोग रहती है पृथ्वी से खुराक खींचती है और वृक्ष के प्रत्येक अङ्ग को बाँटती रहती है। खुराक मिलने पर वृक्ष हरा भरा हो जाता है, उसमें नित नये पल्लव निकलते दिखाई देते हैं और जब जड़ में कीड़ा लग जाता है अथवा वह निर्बल होकर खुराक नहीं खींच सकती तो वह खुद खुश्क हो जाती है और सारे वृक्ष को भी सुखा डालती है।

*

वृक्ष का कल्याण इसी में है कि वह अपनी जड़ को विकारों से बचाये रक्खे। आँधी और ओलों के असर को अपने ऊपर ले, यदि वह बच जायेगी तो वृक्ष के सूख जाने पर भी नई कोपलें निकाल कर वृक्ष का काया कल्प कर देगी और यदि जड़ को हानि पहुँच गई तो वृक्ष का जीवन ही समाप्त हो जायगा।

*

जड़ अकेले ही सारा काम नहीं कर लेती उसके कार्यों में शाखायें और पत्ते इत्यादि सब ही सहायता पहुँचाते हैं। यह

सब ही थोडी-थोड़ी खुराक वायु और सूर्य से खींचते रहते हैं और अपनी जिन्दगी कायम रखते हैं। यह यदि जड़ पर ही सारा भार डाल दिया जाय तो वह इतने बड़े बोझ को अकेली सहन न कर सकेगी और घबड़ा के वृक्ष से सम्बन्ध विच्छेद (अलग) कर लेगी ।

*

कृष्ण भगवान ने ब्रजवासियों की रक्षा करने के लिये गोवर्धन पर्वत को उठाकर उङ्गली पर रख लिया था। ब्रज-वासियों ने जब देखा कि यह सब हमारे लिये किया जा रहा है तो वह सब ही लाठी लगाकर खड़े हो गये। कृष्ण का बोझ हलका हो गया और उनका जी भी खुश हो गया। यदि उस समय ब्रजवासी ऐसा न करते तो क्या जाने कि कृष्ण घबड़ा के पहाड़ को छोड़ भागते और सारे ब्रजवासी उसी के नीचे दब मरते ।

*

अच्छे गुरुओं के सारे काम शिष्यों के लाभ के लिये होते हैं, पिता की कमाई पुत्रों के ही काम आती है। यदि कोई शिष्य अथवा कोई पुत्र न प्रेम रखता हो, न सेवा करता हो और न आज्ञा मानता हो तो तुम्ही बताओ कि उसकी सम्पत्ति में से कितना लेने का वह अधिकारी है।

*

जड़ में यह सामर्थ्य होती है कि जब चाहे वृक्ष को किसी डाली से अपना सम्बन्ध तोड़ के उसकी खुराक बन्द कर दे और उसको सुखा दे जैसा कि तुमने देखा होगा कोई वृक्ष आधा हरा है और आधा खुश्क। ऐसा कब होता है ? जब दोनों ओर की आकर्षण शक्ति में कमी आ जाती है । यदि तुम भी अपने

को हरा-भरा देखना चाहते हो तो जिस तरह भी हो सके गुरु को अपना बनाये रहो, अपनी सेवा सुश्रुषा से उसे खुश रक्खो, तुम्हारा कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा।



आजकल के लोग अपने लिये तो सभी कुछ चाहते हैं संसार भी मिल जाय और परमार्थ की भी सारी दौलत बिना कुछ करे धरे पेट में आ जाय परन्तु आ कैसे जाय ? तुमने भी कोई काम ऐसा करके दिखाया है जिससे गुरु तुम्हारे ऊपर रीझ जाँय और तुमको अपना समझने लगें।



जब किसी के लिये तुम्हारे अन्दर प्रेम उदय हो जायगा तो फिर उसका कष्ट तुमसे न देखा जायगा। पिता अपने प्यारे पुत्र को कष्ट दूर करने के लिये सर्वस्व निछावर कर डालता है, एक युवा पति अपनी प्रेम पात्री पत्नि के लिये तन-मन-धन कुरबान करने को उतावला फिरता रहता है तथा उसके आराम देने के लिये अपना खून-पसीना एक कर डालता है परन्तु गुरु के लिये भी कभी ऐसा ख्याल तुम्हारे दिल में आया ? उसकी आत्मा को शान्ति देने के लिये तथा उसके शरीर को आराम पहुँचाने के लिये क्या-क्या काम तुमने किये ? क्या तुम्हारे दिल पर कभी जूँ भी रेंगी कि वह इस समय बड़े कष्ट में है इतना बोझ नहीं उठा सकते; चलो हाथ पैर अथवा धन से उनका हाथ वटायें तो फिर कैसे यह उम्मीद करते हो कि वह तुमसे प्रेम करेंगे और अपनी कमाई तुम्हारे अर्पण कर देंगे। जरा सोचो क्या तुम आप ही अपना दुश्मन नहीं हो, अथवा तुम अधिकारी हो ? मुहव्वत या दोस्ती इसी का नाम है ?

जिस तरह अभी तक तुमने अपने शरीर और मिहनत की कमाई से संसारी सम्बन्धियों और कुटुम्बियों की सेवा की है उसी तरह जिस दिन परमार्थिक भाई-बन्धों की सेवा करने लगोगे और उनको अपना समझने लगोगे उसी दिन गुरु की दया तुम्हारे ऊपर होगी और तुम अधिकारी समझे जाओगे और जो ऐसा करने को तैयार नहीं हो तो घर बैठो और मौज करो, किसे फिकर पड़ी है कि जो तुम्हारे लिये परेशान हो और वृथा ही कष्ट झेले। श्री कबीर साहब ने कहा है—

जैसे प्रीति कुटुम्ब से तैसे गुरु से होय।
चले जाय बैकुण्ठ को बार न पकड़े कोय॥

प्रेम यों ही नहीं मिलता, मज़हबी इतिहास को पढ़ो, इसके लिये लोगों ने अपनी जानें दी हैं, धन और वैभव निछावर कर डाला है, तब कुछ अंश उसका पा सके हैं। तुम इतनी अमूल्य चीज को योंही बातें बनाकर लेना चाहते हो सा कौन ऐसा बेवक़ूफ़ है जो तुम्हें पकड़ा देगा। उसका मूल्य चुकाओ, पूरा नहीं दे सकते तो जैसी सामर्थ्य रखते हो उसके अनुसार ही सही, तब तो तुम इसके हक़दार बन सकते हो अगर अपना सारा बल और सारा धन सन्तान और स्त्री की फैशन और सुख के लिये भेंट कर दिया है तो उन्हीं लोगों (स्त्री) से दीक्षा भी ले लो, गुरु से एक और नया सबक सीख कर क्या करोगे ?



हम यह नहीं कहेंगे कि उनको आराम न पहुँचाओ, उनकी ख़बरगीरी न करो। नहीं, यह तुम्हारा कर्त्तव्य है जो लोग

अपने बच्चों व घर वालों को निराधार छोड़ के वैरागी हो जाते हैं उनको ईश्वर दण्ड देता है। उनके ऊपर वह पातक सवार रहता है इसलिये उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। उनको भी आराम पहुँचाओ। ईश्वर के भेजे हुए प्राणी समझ के उनकी हर प्रकार से सेवा करो परन्तु थोड़ी अपने उद्धार की खबर रक्खो। कर्त्तव्य को मत भूलो।



साल में कुछ दिन सत्संग की नजर करो और आमदनी का ३२ वाँ भाग यानी रुपये में से साढ़े पन्द्रह आने उनके लिये रक्खो और दो पैसे सत्संग की भेंट कर दो, तो भी तो सत्संग का बहुत कुछ काम चल सकता है और गुरु के हुक्म की तामील भी हो सकती है। यही उनकी आज्ञा थी परन्तु तुम तो वह भी दो पैसे खा डालते हो तो बताओ कि आज्ञाकारी कहाँ रहे और उनकी दया किस मुँह से चाहते हो।



दूसरी संस्था और सोसाइटियों को देखो वहाँ लोग हजारों रुपये गुरुओं को दे डालते हैं परन्तु यहाँ के गुरु अपने लिये न तुमसे धन चाहते हैं और न किसी प्रकार की सेवा लेकिन जो काम तुम्हारे ही लाभ के लिये उन्होंने जारी किये हैं उनमें भी तुम उनका हाथ नहीं बंटाते तो उनकी आत्मा तुम्हारी ओर से कैसे खुश हो।



गुरु को सब कोई रूहानी बाप (आत्मिक पिता) तो कहते हैं परन्तु पिता के दुःख सुख का कभी दिल में ख्याल नहीं होता वह तकलीफें उठा रहा है और (तुम्हारे लिये) मर रहा है और तुम अपनी बीबी बच्चों के साथ मजे उड़ा रहे हो। न तन

से न धन से किसी प्रकार भी उनकी सहायता नहीं करते हो तो यह तुम्हारी मनुष्यता कैसी है। हमारी समझ में तो आती नहीं।

※

संसार में हर जगह बदला चुकाने का व्यवहार चल रहा है। ईश्वर भी अपने ऐसे भक्तों को जिन्होंने किसी प्रकार की नज़र नियाज़ उसे चढ़ाई हो, इस लोक वा परलोक का सुख देता है, तथा जो उसको अनन्य भक्ति के साथ अपने को दे डालते हैं उसे वह हमेशा के लिए मुक्त कर देता है। लिखा है—जो एक हाथ ईश्वर की ओर बढ़ाता है ईश्वर सौ हाथ उसकी ओर बढ़ाता है। ईश्वर तो ईश्वर ही ठहरा। उसकी बराबरी कौन कर सकता है। परन्तु एक बात हम भी कहते हैं। सुनो—तुम में से जो कोई भी तन-मन और धन द्वारा हमारे मिशन की सेवा करेगा तो जो कुछ भी उनकी सेवा का मूल्य होगा उससे दस गुनी रूहानी दौलत गुरु-दरबार से हम तुम्हें दिलवा देंगे, यदि इसमें फ़र्क हो जाय तो तुम शिकायत करना। और अगर नहीं किया चाहते हो तो तुम्हारी तुम जानो। हमारा तो ऐसा भी ख्याल हो रहा है कि जो कुछ तुमने अभी तक पाया है वह भी तुमसे कहीं न छिन जाय। इसलिए अब भी चेत जाओ तो अच्छा है। वाणी है—

ज्ञान समागम, प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइये सतपद धाम निवास॥
गुरु किया है देह को सतगुरु चिन्हा नांहिं।
भव सागर की धार से फिर-फिर गोता खांहि॥



हमारे एक मित्र डाक्टर थे। उनके पास थोड़ी जिमीदारी भी थी कि जिसमें उनके कुटुम्बियों तथा भाइयों का हिस्सा भी था। ये ही नम्बरदार थे इसलिए सबके हिस्से का रुपया वसूल करके खा जाते, वह सब चिल्लाते ही रहते। मुकदमेबाजी में भी पक्के थे, झूठे दस्तावेज बनाकर नालिश कर देना उनके बायें हाथ का खेल था। आसामियों को भी चूसते, दवाओं का हिसाब भी दूना तिगुना लिखकर लोगों पर नालिश ठोंक देते इस प्रकार अधर्म से रुपया बटोर-बटोर खूब इकठ्ठा किया। एक दिन शाम को दवाख़ाना बन्द कर झूठे गवाह बनाने के लिए शहर के दूसरे मुहल्ले से गये थे। सबेरे एक मुक़दमे की तारीख थी उसी के सम्बन्ध में लोगों से बातचीत कर रहे थे कि अचानक मृत्यु के गण शिर पर आ चढ़े और देखते के देखते ही उनके प्राणों को खींच कर ले गये। जिस सम्मान के लिए उन्होंने यह पाप कमाया था उनका न तो मुख देख सके और न आगे अन्तिम समय में उनसे बातचीत ही कर सके। पीछे यमराज के देश में उनको क्या-क्या वेदना सहनी पड़ी होगी, नरक की विकराल अग्नि में उनको डाला गया होगा अथवा तप्त लौह पर उनको घुमाया गया होगा, यह तो ईश्वर जाने परन्तु इतना तो प्रत्यक्ष ही था कि उनकी इसी बुरी कमाई से मौज तो उनके लड़कों ने उड़ाई और सजा उन्हें भुगतनी पड़ी। क्या ऐसी घटनाओं से आप लोग कुछ सबक़ अपने लिये ले सकते हैं ?



हम नित्य प्रति लोगों को मरते देखते हैं और जीते भी देखते हैं परन्तु ऐसा भय हमको कभी भी नहीं होता कि यह हमारा

शरीर भी क्षण भंगुर है न जाने किस समय प्राण पखेरू निकल भागे इसीलिए न तो हमारा भजन ही ठीक होता है और न सत् असत् कर्मों से हम डरते हैं। दिन रात वासनाओं में लिप्त रहते हैं और करने न करने सभी काम करते हैं। किसी न किसी तरह धन बटोरना और अपनी स्त्री तथा संतान को संतुष्ट रखना ही हमने अपना कर्तव्य समझ रखा है। अपने आत्म-कल्याण के लिए कभी इतना भी विचार हमारे अन्दर नहीं आता कि इस जीवन में इतनी शुभ कमाई तो कर ही लें कि मुक्ति वा स्वर्ग न मिले तो मनुष्य बने रहें। पशु-पक्षी और कीट पतंग की योनियों में न जांय परतु इतना कौन सोचता है।

*

किसी मुसाफिर खाने में इधर-उधर से आकर दस प्राणी इकट्ठे हो गए उनमें दो तीन स्त्रियाँ और दो एक बच्चे भी थे। पास रहने से आपस में थोड़ा मोह भी हो गया। एक उनमें मूर्ख दास भी थे, शेष सब चालाक, दगाबाज और स्वार्थी थे। सबने मिलकर उन मूर्खदास को बेवकूफ बनाया, सब किसी न किसी प्रकार से उन पर बनावटी स्नेह प्रगट करने लगे। एक वृद्धा-स्त्री ने पुत्र कह उनका सम्बोधन किया और उनकी पीठ पर हाथ फेरा। एक युवा लड़की भैया कह कर उन्हें पुकारने लगी। लड़कों ने अपना बाप बना लिया और उनकी गोद में चढ़ बैठे। एक बुढ्ढा आदमी उनका पिता बन बैठा और प्यारी-प्यारी शिक्षा देने लगा। शेष बराबर वाले उनको अपना बड़ा भाई मानने लगे। धीरे-धीरे इनका दिल भी उधर को झुकने लगा और उनको अपना समझने लगे। सारा कुटुम्ब इकट्ठा हो गया अब केवल दम्पति की कसर थी। पास बैठी हुई एक युवती ने दुपट्टे को ओढ़ कर लजाते हुए शरमाते हुए एक नयन कटाक्ष उनकी

ओर फेंक दिया। अब क्या था, मूर्खदास का दिल बल्लियों उछल गया, वह मूर्खदास उस पर सर्वस्व निछावर करने को ही तैयार नहीं हो गये बल्कि अपना आपा खो तन-मन से उसकी सेवा में जुट पड़े। स्त्री मुसकराते हुई बोली—बैठे-बैठे क्या करते हो, इन सबके लिए भोजन का प्रबन्ध नहीं करोगे क्या? मूर्खदास अपनी मन-हारिणी की बात कैसे टाल सकते थे, उसे तो खुश रखने में ही इन्हें आनन्द मिलेगा। पास कौड़ी भी नहीं थी, परन्तु बोले अभी लाता हूँ।

इसी चिन्ता में बाजार पहुँचे, हाट का दिन था, भीड़ हो रही थी, अवसर पा एक मनुष्य की जेब टटोली। भाग्य ने सहायता की, पाँच रुपये का नोट हाथ लगा। झट भीड़ से निकल हलवाई की दुकान पर पहुँचे, अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ, पूड़ी, रबड़ी मलाई इत्यादि खरीदा, पान बनवाये। इस तरह तीन रुपये खर्च करके यह सब सामान ले घर पहुँचे। वह सब इनकी बाट जोह रहे थे। इतना सामान लाते हुए देख बड़े प्रसन्न हुए भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इन्होंने बचे हुए दो रुपये तो अपनी हंसगामिनी प्रिया के हाथ पर रक्खे और शेष सामान वृद्धा माता की सुपुर्द किया। माता ने बड़े आदर भाव से प्रथम इनको खिलाया फिर सबको परस के खिलाने लगी, सब सराहना करते जाते और खाते जाते हैं।

अब तो मूर्खदास का नित्य प्रति का यह दस्तूर हो गया कि मिहनत से, मज़दूरी से, चोरी से, दगाबाजी से, मक्कारी से, चालाकी से, किसी न किसी प्रकार पैसा लाना और उन सबकी ख्वाहिशें पूरी करना। कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की ओर कुछ ध्यान नहीं। बच्चे कहते हैं हमें कपड़ा बनवादो, स्त्री कहती है हमको अमुक ज़ेवर गढ़ा दो, मूर्खदास कहीं न कहीं से लाता और इन

सब की इच्छायें पूर्ण करता है और इसमें ही खुशी मानता है। अब आजकल इसे दीन दुनिया की कुछ खबर नहीं है। उसकी सारी शक्तियाँ इसी में खर्च हो रही हैं अब उसे यह भी याद नहीं रही कि मैं कहाँ से आया था और कहाँ जाना था, लिप्त हो रहा है।

पुलिस ताक में थी। एक दिन अवसर पा उसे दबोच लिया। अब मूर्खदास को होश हुआ। उसे अपने कर्त्तव्य याद हो आये, रोने चिल्लाने लगा, अपनी करतूत पर पछिताने लगा, क्षमा याचना करने लगा, परन्तु वहाँ सुनने वाला कौन था। मूर्खदास की मुश्कें कसली गईं और उसे सिपाही पकड़ के ले चलने लगे। धोखेबाज़ सम्बन्धी रो रहे हैं। मूर्खदास के लिये नहीं। अपने लिये। कह रहे हैं-हाय ! अब कौन हमारे लिये खाने पीने और आराम की वस्तुएँ लाएगा ? हमारे दिन इतने सुख से कैसे कटेंगे ?

एक दिल-चला सिपाही बोल उठा—तुम सबने भी खूब माल उड़ाए हैं। सारी कमाई इसकी खाई है। यदि इसके बदले में तुम में से कोई तैयार हो जाय तो इसको हम छोड़ दें। इस बात के सुनते ही सब ने कानों पर हाथ रक्खा, कहने लगे हम क्या जान साहब ? हम क्यों इसके बदले में दण्ड भोगें ? इसने जैसा किया वैसा फल उठाया। हमारी कब इच्छा थी कि यह बेईमानी से धन सम्पत्ति पैदा करै। इसका कर्म इसके साथ और हमारा कर्म हमारे साथ।

चलते-चलते मूर्खदास ने उन अपने कुटुम्बियों पर, कि जिनके आराम के लिए वह सारी जिन्दगी बैल की तरह जुटा रहा था, एक हसरत की निगाह डाली और चल दिया। आगे उसकी

क्या गति हुई होगी भगवान जाने यह तो एक कहानी थी परन्तु यदि हम अपनी ओर देखें, अपने जीवन पर एक दृष्टि डालें तो हमारी भी वास्तव में ऐसी ही दशा है कि जैसी मूर्खदास की थी। यह हमारा घर एक मुसाफिर खाना है, प्राणी कुछ दिनों के लिए इधर-उधर से आकर यहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। हम अज्ञानता के कारण उनको अपना समझ उनसे ममत्व कर बैठते हैं और उनकी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए करने न करने सभी काम करने लगते हैं। हम कभी भी यह नहीं सोचते कि यह सब स्वार्थी और धोखेबाज मतलब के हैं। चैन खुद उड़ाते हैं और दण्ड हमको दिलवाते हैं। हम इनके लिए अधर्म की कमाई क्यों करें और अपना सारा समय इनकी ही सेवा में क्यों लगावें। थोड़ा अपने आत्म कल्याण के लिए, ईश्वर चिन्तन के लिए, समय निकाल लें। उसके द्वारा ही हमको सुख और शान्ति मिलेगी। यह सब यहीं छूट जायेंगे केवल हमारे शुभ कर्म हीं हमारे साथ अन्त में जायेगे और वही हमको स्वर्ग में पहुँचावेंगे।

परन्तु मोह और अज्ञानता का पर्दा बुद्धि को ढक लेता है उससे विवेक की शक्ति छीन लेता है और हम विचारहीन बने हुए यंत्र की भाँति गृहस्थी रूपी कीली के चारों ओर घूमते हुए चक्कर काट-काट कर प्राण खो बैठते हैं जैसे तेली का बैल आँखों पर पट्टी चढ़ा कोल्हू के चारों ओर ही घूमता दिखाई देता है, उस उतनी भूमि से बाहर की दुनियाँ की उसे खबर ही नहीं होती, यही हम सब की दशा है। बालबच्चों और स्त्री इत्यादि की सेवा ही में हमारे चौबीस घण्टे खत्म होते हैं एक घंटा भी परमार्थ के लिये, अपनी तथा दूसरों की आत्म सेवा के लिये नहीं दे सकते।

दे क्यों नहीं सकते देते नहीं हैं। कारण–इसको ज़रूरी नहीं समझते। मन संसारी बन गया है, संसारी वस्तुओं पर ही वह प्यार करता है, उन्हीं के लिये तन-धन और समय उसके पास है यदि उसको दूसरी ओर ले जाना चाहें तो जाने को तैयार नहीं होता। कभी-कभी शुभ संस्कारों ने इधर की ओर ले जाना चाहा तो मन ने उसी समय एक ठोकर उसमें दी और उसको फिर अपनी ओर खींच लिया। विषयों में फँसा दिया।

अब कोई हम से पूछता है क्यों साहब भजन पूजा या अमुक शुभ काम आपने छोड़ दिया क्या ? उत्तर मिलता है क्या करें महाशय हमारा जी नहीं चाहता, हमारा दिल उधर झुकता नहीं। मानो यह ऐसे मूढ़ अज्ञानी और विवेकहीन बन गये हैं कि अपना असली रूप तथा गौरव इन्हें याद ही नहीं रहा। जिधर को मन ले जाना चाहता है, जो कुछ दिल कराना चाहता है उसी को करते हैं। जानते करते हैं और अनजानते करते हैं। अपनी कोई शक्ति इनकी नहीं रही।

जब हमारी यह दशा है, हम इस कदर (मन व दिल) के बन्धन में हैं तो फिर इस ओर को दृष्टि ले जाना ही हमारा बेकार है। इसमें तो मन ही से लड़ाई करनी होगी इसको विषयों से हटाना होगा, उसका पुराना ख्याल बदलना होगा, उसका स्वभाव पलटना होगा, उसे अपने अधिकार में करना होगा इत्यादि। जो लोग इसमें असमर्थ हों वह स्त्री-बच्चों में ही लिप्त रहें। परमार्थिक धन–उन ऐसों के लिए नहीं है।



अधिकतर नवयुवकों के पत्रों में यही शिकायत रहती है कि "काम वासना बहुत सताती है, अभ्यास में मन नहीं

लगता" इसका कारण यह है कि आजकल का वातावरण (Atmosphere) दूषित हो रहा है। हमारा रहना हर समय ऐसे ही लोगों में रहता है कि जिनके अन्दर से काम की धारें निकल-निकलकर हमसे टकराती रहती हैं। वर्तमान युग के स्त्री पुरुष चाहे वह गृहस्थी ही क्यों न हों, काम वासना में लिप्त हैं, विषयी पुरुषों का तो कहना ही क्या है, हर घड़ी वही चर्चा, वही ध्यान। फिर इस पर हमारे पुराने संस्कार की जिनको हमने घर में और स्कूल में रहकर बनाया है और भी रङ्ग चढ़ा देते हैं। यह सब मिल-मिला कर हमारे मनको उद्विग्न कर देते हैं और काम की लहरें हमारे अन्दर उत्पन्न हो जाती हैं।

इसीलिए तो यह बताया जाता है कि जहाँ तक भी हो सके अभ्यासियों को सबसे अलग एकान्तसेवी (Reserve) रहने में ही भलाई है। अपने काम से काम, न तो कानों में ऐसी बातें सुनें कि जिससे काम उत्तेजित हो, न आँखों से ऐसे दृश्य देखें कि जो विकार पैदा करें और न मुख से ऐसे शब्द निकालें जो अन्दर पहुँचकर कामाग्नि प्रज्वलित करें। वर्ष या छैमास में एक दिन को अच्छा सत्संग मिल पाता है और शेष समय कुसंग में कटता है तो फिर विकार क्यों न आवें ? सत्संग का प्रभाव कुछ दिनों ठहरा, कुछ दिनों हम ऐसे विचारों से बचे रहें, धीरे-धीरे उस पर पर्दा आता गया और हम भी वैसे ही बन गये कि जैसे हमारे पास के रहने वाले दूसरे लोग थे।

एक कारण इसका यह भी हो सकता है कि हमारा भोजन शुद्ध सात्वकी नहीं होता। राजसी और तामसी भोजन विकार लाता है। उससे विचार राजसी और तामसी उत्पन्न होते हैं। काम और क्रोध की वृत्ति का भोजन से बहुत कुछ सम्बन्ध है। खाने के पदार्थ सात्वकी हों भोजन चुपचाप ईश्वर या गुरु के

ध्यान में किया जाय। बनाने वाला और परोसने वाला अच्छे विचारों का हो, अन्न अधर्म की कमाई का न हो तो वृत्ति शुद्ध रहती है।

बुरी वासनाओं से बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि अपने को किसी समय भी बेकार न रखे। जिस समय हमारे पास कोई काम नहीं होता तब मन बुरे ख्यालात हमारे सामने पेश करता है। उन ख्यालात की टक्कर से दिमाग में गर्मी उत्पन्न होकर वीर्य पर असर डालती है और वीर्य पतला होकर बहने लगता है। जब तक बाहर के व्यवहारिक काम हों तब तक उनको करो और जब उनसे फुरसत हो और कोई काम न हो तब अच्छी-अच्छी पुस्तकों का अवलोकन करो, जिन पुस्तकों में शुभ शिक्षाएँ हों, जिनके पढ़ने से हृदय में भगवान के लिये प्रेम बढ़े उनका पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है। सर्व साधारण के लिये महात्माओं के जीवन चरित्रों का पढ़ना अत्यन्त ही लाभ-दायक होता है। "साधन" की पुरानी प्रतियों को बार-बार पढ़ना और उस पर मनन करना भी लाभदायक होगा। सोते समय हाथ मुँह धोकर पवित्राई से सोना, सोने से पूर्व रामायण वा गीता का पाठ करना तथा सोने के समय गुरु-मूर्ति का ध्यान करके सो जाना बुरे स्वप्नों से बचाता है। जिनको बुरे स्वप्न नहीं आते उनको स्वप्नदोष नहीं होने पाता और वह निर्बलता से बच जाते हैं।

चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जो लोग मन ही मन में नाम जप करते रहते हैं उनका मन भी बहुत से विकारों से बचा रहता है। इसका अभ्यास डाल लेना चाहिये। इसमें भी वही सिद्धान्त काम करता है कि मन ठाली नहीं हुआ, नाम जप में अटका रहता है।

सूफ़ियों में एक साधन अभ्यासियों से कराया जाता है जिसको 'नज़र-बर-कदम' कहते हैं। इसके अर्थ हैं कि हर समय अपने हृदय पर दृष्टि रक्खे ताकि मन और इन्द्रियाँ बुराई की ओर हमको न ले जाने पायें। जिस समय ऐसा होते हुए पायें फौरन उधर से उनको रोक लें। अगर भूल से कभी ऐसा कोई काम हो जाए तो उसके लिये कोई प्रायश्चित करें। निराहार उपवास या अपनी आमदनी का कोई भाग जुर्माना का देना सबसे सरल प्रायश्चित है। बहुत से लोग अपने को बुराई से बचाने के लिये डायरी लिखा करते हैं। डायरी से इस बात का पता चलता रहता है कि पिछले सप्ताह से हमने इस सप्ताह में कितनी उन्नति की। संसार के बड़े-बड़े सब ही महापुरुषों ने डायरी लिखी थी, अब भी लिखते हैं। यह थोड़ी बातें संक्षेप में हमने बताई हैं। इन पर अमल करके देखो थोड़े दिनों मे तुम्हारी आदत बदल जायगी।



आत्म-अनुभव के लिये, प्रभु के दर्शन के लिये पढ़ने-लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है इस बात की, कि चल पड़े और हिम्मत बांधकर चला चले, जब तक कि अपने अभीष्ट स्थान को न पहुँच जावे। कहीं जाने का इरादा न करो परन्तु बैठे ही रहो या कभी-कभी एक दो कदम चल लिये तो कैसे पहुँचोगे।



एक राजा का दर्शन करने का बहुत से लोगों ने इरादा किया इनमें कुछ पढ़े लिखे और शेष कुपढ़ गंवार थे। सबने जानकारों से रास्ता पूछी। बेपढ़े तो बिना सोचे विचारे हिम्मत

वांध के चल दिये और पढ़े लिखे अपनी विद्या की कसौटी पर उसकी बात की जांच करने लगे, अनेक प्रकार के तर्क वितर्क उठाने लगे और निर्णय न होने पर शक शुवाह में अपने को डाल चुप हो बैठे। भला यह लोग कैसे पहुँच सकते हैं।

*

इन पढ़े लिखे लोगों में भी दो प्रकार के मनुष्य होते हैं एक वह जो खूब पढ़के मनन करके हर बात की तह को पहुँच चुके हैं ऐसे सुलझे हुए विद्वान बहुत शीघ्र उन्नति करते हैं और बे पढ़े लिखों से तेज़ जाते हैं। परन्तु दूसरे वह जो अधूरे हैं जिन्होंने थोड़ी सी पुस्तकें पढ़के एक आइडिया (झूठा ख्याल) अपने अन्दर कायम कर लिया है और उस अपने ख्याल में जकड़ गये हैं ऐसों को आगे चलाना बड़ा कठिन हो जाता है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि से धुंये के अंवार उठके आकाश में फैल जाते हैं उसी प्रकार इनके अन्दर शंकाएँ उत्पन्न होती रहती हैं और इनके मन बुद्धि और आत्मा को ढ़कलेती हैं। इनसे कुछ न हो सकेगा।

*

राजा के दर्बार में कुछ पढ़े और कुछ बेपढ़े पहुँचे। दोनों ने किला देखा, हाथी घोड़े फौज़ देखी, दर्बार हाल देखा, महल देखे और राजा के दर्शन किये। बताओ दोनों की आँखें एक सी थीं और दोनों प्रकार के लोगों को एक सा दिखाई दिया या दो प्रकार का ? जैसा पढ़े ने देखा वैसा ही बेपढ़े ने। हाँ फर्क इतना है कि पढ़ा हुआ विद्वान उसको दूसरों से वर्णन कर सकता है उस पर पुस्तकें लिख सकता है, पढ़ी हुई पुस्तकों से अपने

अनुभव का मिलान कर सकता है और बेपढ़ा यह सब नहीं कर सकता। पर उसके कल्याण में क्या कमी रही ?

*

यह बात चाहे हमारी ठीक नहीं जंचे। श्री कबीर साहब और ह० मुहम्मद साहब तो एक अक्षर भी नहीं जानते थे परन्तु इन दोनों महापुरुषों ने वह अद्भुत बातें बतलाईं कि जिनको सुनकर मनुष्यों की एक बहुत बड़ी तादाद उनकी अनुयायी हो गई और आज भी है। और इनके कलाम (वाणी) पुस्तकों की शक्ल में मिल रहे हैं जो बहुत ऊँचे हैं।

*

गतवर्ष भण्डारे पर एक युवक आया था, वह सीधा था गरीब था, छोटी तनख्वाह की नौकरी पर अपना गुजारा करने वाला, था बहुत थोड़े अक्षर ज्ञान-रखता था वह सब होते हुए भी था जिज्ञासु। हमने उसे मार्ग दिखाया और वह विश्वास से चल पड़ा, उसके नौ दस महीने ही गुजरने पर, उनका पत्र मिला जो कि दूसरे के हाथ का लिखा था। पत्र पढ़कर चित्त प्रसन्न हो गया। उसने अपनी अवस्था लिखी थी—"अब कुछ दिनों से जैसा मैंने २।। महीना पहले अपनी चिट्ठी में लिखा था साधन करते समय पहले आपके दर्शन होते हैं फिर एक प्रकाशवती वर्षा होती अनुभव होती है। बड़ा आनन्द आता है कुछ देर बाद यह मालूम देता है कि आप हैं परन्तु दिखाई नहीं देते। इसके बाद यह मालूम देता है कि कोई संसार है जिसमें घमासान हो रहा है। फिर वह बारिश ऊपर ब्रह्माण्ड की ओर खिंचती हुई मालूम होती है। फिर लैम्प की सी रोशनी चमकती है और एक मोटी धार की बारिश शुरू हो जाती है। इसी अवस्था में आपके और महात्मा जी के दर्शन होते हैं। फिर लैम्प के पास जाने से कोई चीज़ धक्का देती है और मैं

उसी वारिश के साथ नीचे आ जाता हूँ। यह आजकल मेरी अवस्था है।"

बाबू लोगो सोचो अपने सीने पर हाथ धरो, तुम्हें दस-दस बारह-बारह वर्ष साधन शुरू किये हो गये तुमने ऐसी कोई अवस्था अनुभव की जो कि बेपढ़े नौ दस महीने के साधक को अनुभव हो रही है। क्या अभी इसके लिये और आशा नहीं है कि किसी न किसी दिन पूर्ण अनुभवी महापुरुष बनेगा ? यदि ईश्वर की दया से अपने काम में लगा तो रहा। पर तुम्हें तो इस काम के लिये फुर्सत ही नहीं है। फैशन और हजामत के लिये वक्त, बाजार में घूमने के लिये वक्त, गप्पें लड़ाने के लिये वक्त, थियेटर और सिनेमा के लिये वक्त है पर ईश्वर भजन के लिये कि जो अत्यन्त सुख और शान्ति देने वाला है, सारी विपदाओं को दूर करने वाला है उसके लिये वक्त नहीं है फिर उन्नति कैसे हो ?

इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। अपराध है तो वर्तमान शिक्षा का, इसने तुम्हें निकम्मा बना दिया है। तुम्हारी विवेक शक्ति तथा श्रद्धा को तुमसे छीन लिया है। जो चीजें जीवन के लिये दुखदाई हैं उन्हें तुम पकड़े हुए हो और जो सुखदाई हैं उनसे दूर भागते हो। पर खुदा ने तुम्हें अकल दी है और इस अपनी अकल पर तुम्हें नाज़ (गर्व) भी है तो क्या इतना नहीं सोच सकते कि चन्द मिनट की फुरसत निकालकर नित्य प्रति इस जगत् के मालिक की ओर थोड़ी देर बन्दगी कर लिया करें, उससे हमारा कल्याण होगा ?

सुनो चेत जाओ। यदि नहीं सम्हले, तुमने धार्मिक जीवन नहीं बनाया, तुमने सदाचार की ओर ध्यान नहीं दिया, तुमने फैशन को छोड़कर सादगी नहीं पकड़ी, तुमने अपने समय और धन को फिजूल कामों से नहीं बचाया तो वह वक्त दूर नहीं है

पास ही आ रहा है कि जब तुमको सब लोग बुरी निगाह से देखेंगे और तुम ज़लील और ख्वार होगे। तकलीफों और विपदाओं के बादल तुम्हारे शिर पर मण्डलायेंगे और तुम न इधर के रहोगे न उधर के। सोचो। शर्म खाओ। अपने जीवन को संयमी बनाओ। अब भी समय है। अधिक क्या कहें।

*

आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने वालों को दूसरों का प्रहार सहना चाहिये पर अपनी ओर से किसी पर प्रहार नहीं करना चाहिये। निन्दा सुनने में भलाई है और निन्दा करने में अपनी बहुत हानि होती है। शास्त्र कहता है कि निन्दा करने वाला उन सब बुरे संस्कारों को अपने ऊपर ले लेता है जो उसको भुगतने पड़ते इसलिये हित ही करता है।

*

माता-पिता के व्यवहार का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है और आगे उनका मस्तिष्क उसी सांचे में ढल जाता है कि जिसको (चाहे वह अच्छा हो या बुरा) माता पिता ने तैयार किया था। मुख से उपदेश देने से कुछ नहीं होता, व्यवहार अच्छा होना चाहिये, उनके सामने आदर्श अच्छा रखना चाहिये तभी वह श्रेष्ठ बन सकते हैं और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। तुम खुद शराब के नशे में चूर रहो, दिन भर चालाकी-मक्कारी और झूंठ से काम लो और बच्चों से कहो कि इन बातों को मत करना बुरी हैं। भला वह ऐसी शिक्षा कब मान सकते हैं। खुद नेक बनो, सन्तान अपने आप नेक बन जायेगी, कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं होगी।

मुद्रक।
हेमेन्द्रकुमार,
साधन प्रेस, मथुरा.

प्रकाशक :
हेमेन्द्रकुमार,
साधन प्रकाशन, मथुरा

मूल्य ·५५ पैसे
55 पैसे





प्राप्ति स्थान—
साधन प्रकाशन, डैम्पियर नगर, मथुरा।